© 2019 IJSRSET | Volume 6 | Issue 1 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

भारतीय दर्शन की समकालीन उपादेयता

डॉ मोनिका, सहायक आचार्या
मौलिकसिद्धान्तविभाग
डॉ एस.आर.आर. आयुर्वेद विश्वविद्यालय
जोधपुर(राजस्थान)

शोधसारांश - संसार एवं मूल तत्त्व को जिस माध्यम से जाना जता है वह माध्यम दर्शन है। यदि दर्शन न हो तो मानवजीवन निरुद्देश्य होकर मृतप्राय सा हो जात है। केवल भौतिक उन्नति ही जीवन का लक्ष्य नहीं है अपितु भौतिकपदार्थ तो जीवन को सुगम बनाने के साधनमात्र हैं। जीवन का सुख तो मन, बुद्धि और आत्मिकस्तर पर जीवन को उन्नत करने में है। अतः सांख्ययोग, न्यायवैशेषिक एवं मीमांसावेदान्त इन तीनों दर्शनों के उक्त तीनयुग्म आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिकस्तर पर मानवजीवन को परिपूर्ण करते हैं

व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, ब्रह्माण्ड किस प्रकार एक-दूसरे से जुडे हुए हैं यह अधिभूत, आध्यात्म और अधिदेव को समझो बिना सम्भव नहीं और इनका ज्ञान बिना दर्शन के सम्भव नहीं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, शौच, सन्तोष ,तप, स्वाध्याय, कृतज्ञता, समभाव, प्रेम, समता आदि धारणाएँ जीवन के प्रत्येकस्तर पर आवश्यक है और दर्शन मानवजीवन में इन तत्वों का समावेश करता है।

मनुष्य इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और यह मानव की विशेषता है कि वह सदैव श्रेष्ठ की जिज्ञासा करता है । नित्यप्रति सुखी होने की कामना के कारण वन्यजीवों के मध्य रहने वाला मानव वर्तमान में सभ्य और सुसंस्कृत प्रणाली से आधुनिकतम यन्त्रीकृतसाधनों से सम्पन्न जीवनयापन कर रहा है।

दर्शन का उद्भव - दृष्टि या दर्शन यदि सम्यक् न हो तो मनुष्य घोर नैराश्य और अवसाद में चला जाता है यदि जीवन को समझने की कला न हो तो इस सृष्टि में से प्रेम,दया, उदारता, सम्मान, ज्ञान, कला, शिल्प, सौन्दर्य, संगीत सभी कुछ खो जाता है और उसका स्थान घृणा, वैमनस्य, हिंसा, विध्वंस, बर्बरता जैसे अमानवीय व्यवहार ले लेते हैं, यही कारण है कि वैदिकमनीषा ने ईश्वर के अनुपमसृजन की सुन्दरता को अनुभव करने के लिये कतिपय जिज्ञासाएँ अपनी प्रार्थनाओं में प्रस्तुत की -

नासदासीत नो सदासीत्ततदानीं नासीद् रजो नो व्योम परो यत्।
किं आवरीवः कुह कस्य शर्मन् अम्भः किं आसीत् गहनं गभीरम्।।[1]

अर्थात् क्या उस समय कुछ था? नहीं, कुछ भी नहीं था। उस समय न तो लोक थे न ही फैला हुआ आकाश् था। क्या किसने ढका था किसकी सुरक्षा में क्या अगाध जल था। इस प्रकार की विविध जिज्ञासाओं से परिपूर्ण ऋग्वेद का उक्तमंत्र जीवन में संभावनाओं के मार्ग प्रस्तुत करता है। इसी श्रृखंला में ऋग्वेद का सम्पूर्ण दशममण्डल उल्लेखनीय है। कालान्तर में जीवन की यह गवेषणा दर्शन के रूप में कही जाने लगी। वर्तमान में जो उन्नतजीवनशैली का स्वरूप हमारे सामने है वह अभ्युदय(भौतिकोन्नति)का परिदृश्य है परन्तु वैदिकमनीषा ने अभ्युदय को साधन की श्रेणी में परिगणित किया है और इससे भी परे एक तत्त्व निःश्रेयस् का चिन्तन किया है। निःश्रेयस् का चिन्तन वैदिकवांगमय में तो प्रचुर रूप सं े प्राप्त होता ही है परन्तु वैदिकेतर निकाय भी इस चिन्तन से अस्पृश्य नहीं है। निःश्रेयस् को अपवर्ग, निर्वाण, मोक्ष, मुक्ति, विद्या, सम्भूति इत्यादि अनेक नामों से विश्लेषित किया जाता है। निश्रेयस् की कामना ने चिन्तन को एक नवीनदृष्टिकोण प्रदान किया और यही कामना दर्शन का मूलबीज बनी।

दर्शन की परिभाषा- दर्शनशब्द का सामान्य अर्थ है दृष्टि। सामान्यरूप से संसार को जिस माध्यम से जाना जायें वह माध्यम दर्शन के नाम से विख्यात है। मूलतत्त्व अणु से भी अणु और महत् से भी महत् है अतः मूलतत्त्व के अन्वेषण का प्रयास किसी भौतिकयन्त्र से न होकर अन्तर्दृष्टि से सम्भव है। आर्ष ऋषियों ने अपने ज्ञानचक्षुओं से मूलतत्त्व का अन्वेषण किया अतः ज्ञान की यह पद्धति दर्शन कहलायी। व्याकरण की दृष्टि से दृशिर् प्रेक्षणेधातु से ल्युट्प्रत्यय का प्रयोग करने पर दर्शनपद की निष्पत्ति होती है।

दर्शन का उद्देश्य - जीवन को सुखमय बनाना प्राणियों का मूल उद्देश्य होता है े । सुख के अनेक तथाकथित साधनों के होते हुए भी सुख का निर्धारण सम्भव नहीं क्योंकि सुख ऐकान्तिक और अनन्यतम नहीं होता उसके स्थूल कारण इस प्रकार निरूपित किये जा सकते हैं-

1- संसाधनों के अर्जन में कष्ट

2-प्राप्तसम्पदा के संरक्षण में कष्ट

3-प्राप्तसम्पदा के क्षय हो जाने पर पुनः कष्ट

उक्त तीनों अवस्थाएँ अनुभव में प्रतिकूल होती है अतः वे दुःख कहलाती है अतः सुखी मनुष्य भी कुछ समय बाद में दुःखी देखे जाते हैं। यद्यपि सुख और दुःख का कोई निश्चितस्वरूप नहीं है तथापि चिन्तन की मीमांसा ने दुःख के त्रिविध प्रकार निर्दिष्ट किये हैं-

आधिभौतिक- संसार में विविध प्रकार के प्राणियों से प्रतिकूल वेदनाएँ होती है जैसे हिंसा, चोरी, लूटपाट, सम्पत्ति की हानि इत्याद जो भौतिकपदार्थों की क्षति होती है वह प्रतिकूल वेदना उत्पन्न करने के कारण भूतजनित आधिभौतिक दुःख कहलाता है।

आध्यात्मिक- मानव शरीर और मन के स्तर पर जो प्रतिकूलता अनुभव करता है वह आध्यात्मिक दुःख है। यह दो प्रकार का होता है
(अ) शारीरिक : शरीर में होने वाले रोग

(आ) मानसिक : काम, क्रोध, लोभ, मत्सर आदि संवेग

आधिदैविक- दिव्यपदार्थों से प्राप्त होने वाली प्रतिकूल वेदना जैसे बाढ, अकाल, महामारी आदि।

उपर्युक्त तीनों दुःख यद्यपि लौकिक उपायों जैसे चिकित्सा, स्थानपरिवर्तन आदि से भी सम्भव है तथापि ये उपाय तात्कालिक होते हैं इनकी सदा के लिये निर्वृत्ति नहीं होती अतः दुःखों की सदा के लिये निर्वृत्ति करने के लिये दर्शन की आवश्यकता होती है-

दुःखत्रयाभिघाज्जिज्ञासया तदभिघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्।।[1]

इसका आशय यह है कि मनुष्य त्रिविध दुःखों से पीडित रहते हैं अतः उन दुःखों के निवारण की जिज्ञासा करनी चाहिये क्योंकि दुःखनिवारण के उपाय अनित्य ही होते हैं उन उपायों से दुःख से सदा के लिये मुक्ति नहीं होती। इसी प्रकार का चिन्तन इर्शन की उत्पत्ति के प्रसंग में प्रायः प्राप्त होते है।[2]

दर्शन के विभाग- चिन्तन की कोई सीमा नहीं होती इसलिये दर्शन का स्वरूप और उसके भेद में वैविध्य प्राप्त होता है। वेद को प्रमाण मानकर तत्त्वदर्शन की जो प्रक्रिया विकसित हुई दर्शन के उसी निकाय को लेकर विचार प्रस्तुत किये जा रहें हैं। वेद को प्रमाण मानने वाले षड् आस्तिकदर्शन दर्शन इस प्रकार कहे गये हैं- सांख्ययोग ,न्यायवैशेषिक और वेदान्तमीमांसा। ये षड्दर्शन तीन के युग्म में प्राप्त होते हैं इसमें से पूर्व सैद्धान्तिकपक्ष और अपर उसका क्रियात्मकपक्ष है। ये षड्दर्शन आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिकस्तर पर क्रियान्वयन कर मानवजीवन को एक उद्देश्य प्रदान करते हैं।

सांख्ययोग - यह सर्वप्राचीन दर्शन है । प्रायः सभी दर्शन सांख्ययोग की विचारधारा से प्रभावित रहें हैं। सांख्यएवं योगदर्शन में कुल 26 तत्त्वों की मीमांसा प्रस्तुत की गई है इन्हें व्यक्ताव्यक्त और ज्ञ रूप से कहा गया है।[4] सांख्ययोग में मूलतत्त्व 2 है पुरुष और प्रकृति। पुरुष चेतन और प्रकृति जड है परन्तु मानव इस दिखायी देने वाले जड जगत् को ही चेतन मानकर व्यवहार करता है और त्रिविध दुःखों से ग्रसित हो जाता है अतः योग प्रतिपादित समाधि से वह अपने मुक्त स्वरूप को जानकर सदा आनन्दित रहता है। इस जीवन में महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का ज्ञान और उसके अनुकूल व्यवहार से दुःखों से मुक्ति का मार्ग संाख्ययोग प्रशस्त करता है।

न्यायवैशेषिक- न्याय का शाब्दिक अर्थ है प्रमाणों द्वारा परीक्षण तथा विशेष नामक तत्त्व की व्याख्या करने के कारण यह वैशेषिक कहलाया। इस दार्शनिक मार्ग में सृष्टि में सप्तपदार्थों का चिन्तन किया गया है- द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावः सप्तः पदार्थाः।[3]

अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव। पदार्थ का अर्थ है ज्ञान का विषय । इस प्रकार मूर्त और अमूर्त विषयों का परिज्ञान इन सप्तपदार्थों के रूप में न्यायवैशेषिक करता है। न्यायवैशेषिक दर्शन की यह मान्यता है कि परमेश्वर की इच्छा से परमाणुओ के संयोग से जगत् की उत्पत्ति होती है और नाना प्रकार के भूतों की उत्पत्ति होती है। यह जगत् उक्त सप्त पदार्थों की सृष्टि है जो

इस जीवन को जीने के साधन हैं। इस प्रकार न्यायवैशेषिक दर्शन से हम स्थूलजगत् का ज्ञान करते हैं। पदार्थविवेचना का बोध न्यायवैशेषिक प्रत्यक्ष रूप से करता है। शरीर और विविध वस्तुएं पदार्थ है इनकी संरचना परमाणुओं के संयोजन से हुई हैं। पदार्थों की जीवन में क्या उपयोगिता है और इनकी सीमा क्या है, जीवन जीने के लिये यह ज्ञान अति आवश्यक है और यह हमें न्यायवैशेषिक के अध्ययन से भलीभांति स्पष्ट होता है।

वेदान्तमीमांसा- वेदान्तदर्शन के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र तत्त्व है और यह सारा संसार ब्रह्म की मायाशक्ति से उसी प्रकार प्रतीत होता है जैसे समुद्र में लहरें , बुलबुले, झाग प्रतीत होते है। माया के प्रपंच के कारण प्राणी जगत् को ही सत्य मान लेते हैं और विविध प्रकार के दुःखों का अनुभव करते है अतः दुःखों से मुक्ति के लिये जगत् का यथार्थ ज्ञान आवश्यक होता है जो कि शास्त्रोपदेश से होता है। यथार्थज्ञान के उपरान्त मानव मोक्ष को प्राप्त होता है। वेद में पांच प्रकार के वाक्य हैं- विधिमन्त्रनामधेयनिषेध और अर्थवाद[5]। मीमांसादर्शन में शब्द, अर्थ, शब्दार्थसम्बन्ध, वाक्य और वाक्यार्थ के सम्बन्ध में विचार किया गया है। न्यायवैशेषिक के समान ही मीमांसा में पदार्थ स्वीकार किये गये हैं। जगत् के पदार्थो का आत्मा से सम्बन्ध त्रिविध दुःखों का कारण बनता है। वेदविहित कर्म एवं आचरण से आत्मा शुद्ध होती है फलतः दुःख का भी सदा के लिये अभाव हो जाता है। इस प्रकार वेदान्त प्रतिपादित शुद्धाचरणों की क्रियान्विति मीमांसा दर्शन के रूप में प्राप्त होती है।

भारतीयदर्शन का सार यह प्रतीत होता है कि केवल भौतिक उन्नति ही जीवन का लक्ष्य नहीं है अपितु भौतिकपदार्थ तो जीवन को सुगम बनाने के साधनमात्र हैं। जीवन का सुख तो मन और बुद्धि के स्तर पर जीवन को उन्नत करने में है। तीनों दर्शनों के उक्त तीनयुग्म आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिकस्तर पर कार्य करते हैं।

न्यायवैशेषिकदर्शन भौतिकजगत् का विश्लेषण प्रस्तुत करता है कि भौतिकजगत् की रचना कैसे हुई। किस प्रकार परमाणुओं के संयोजन और विखण्डन से नाना पदार्थों का सृजन और विसर्जन होता है जिनसे इस सृष्टि का व्यवहार होता है। स्थूलपिण्ड का ज्ञान प्रमाणों की सहायता से होता है इसलिये न्यायवैशेषिकदर्शन प्रमाणविवेचना प्रस्तुत करता है। न्यायदर्शन सुष्टिज्ञान की सैद्धान्तिकविवेचना प्रस्तुत करता है तथा वैशेषिकदर्शन सृष्टिप्रक्रिया का प्रायोगिकपक्ष प्रस्तुत करता है। जीवन जीने के लिये पदार्थ का ज्ञान आवश्यक है और जगत् में विविधपदार्थों के ज्ञान और अन्वेक्षण के लिये न्यायवैशेषिकदर्शन परमोपयोगी है।

जीवन का द्वितीयस्तर मन है। जो अन्न अर्थात् भौतिकपदार्थ से निर्मित होता है परन्तु अमूर्त होने के कारण इसे भूताभूत अर्थात् दोनों की श्रेणी में मानते हैं। सुख और दुःख की उपलब्धि मन के कारण होती है।[6] इसलिये मन सुख और दुख का आधार है। सांख्य और योगदर्शन में सूक्ष्मशरीर का लिंग अथवा ज्ञापक मन को माना गया है। सांख्ययोग सभी दर्शनों में प्राचीनतम है। सांख्य सैद्धान्तिकपक्ष और योग मन को निर्मल बनाने का प्रायोगिक पक्ष प्रस्तुत करता है। यह योग दर्शन का वैशिष्ट्य है कि यह आसन, प्राणायाम और धारणा विधि के द्वारा मन की निर्मलता को प्रयोग द्वारा स्पष्ट करता है। मन का निर्मलस्वरूप जीवन की सार्थकता के लिये अत्यन्त आवश्यक है। भौतिकरूप से कितनी ही सम्पन्नता क्यूं

न हो जायें यदि मन स्वस्थ नहीं है तो भौतिक सम्पन्नता महत्त्वहीन हो जाती है। मन को जाने बिना जीवन अनुपयोगी होता है और सांख्ययोग मन का स्वरूप स्पष्ट करता है।

आत्मा जीवन का ध्येय है। शरीर और मन पदार्थ है इनकी चेतना आत्मतत्त्व के रूप में मीमांसा और वेदान्त दर्शन में विवेचित है। मीमांसा आत्मतत्त्व का क्रियापक्ष प्रस्तुत करती है तथा वेदान्त आत्मतत्त्व का सैद्धान्तिक स्वरूप प्रस्तुत करता है। बिना आत्मा को जाने सांसारिक गतिविधियां उसी प्रकार संचालित होती है जैसे बिना चालक का वाहन, जो अन्ततोगत्वा किसी विनाश का कारण बनता है।

वर्तमान समस्याओं के निराकरण में दर्शन की उपादेयता

मानवीयस्वभाव निरन्तर उन्नति की आकांक्षा रखता है। अन्ययोनियां अपने ईश्वरप्रदत्त जीवन से संतुष्ट है। आहारभोजननिद्रामैथून केवल ये चार उद्देश्य मानव एवं मानवेतर प्राणियों के लिये निहित है। परन्तु मानव ईश्वरप्रदत्त जीवन में निरन्तर संस्काराधान की अपेक्षा रखता है। वह जल में तैरना चाहता है, आकाश में उडना चाहता है, विश्व पर विजय प्राप्त करना चाहता है। ऐसे अनेक प्रकार के कार्य हैं जो मनुष्य ने अपने सामथ्र्य से कल्पित किये हैं। जिसका प्रभाव हम सभी लोग आज देख रहें है। दो पैरों वाला मनुष्य आज चांद और मंगल पर पहुच गया।

मनुष्य के इसी सामथ्र्य ने उसे सभी प्राणियों से बढकर सुखसुविधापूर्ण और सुरक्षित जीवनस्तर दिया है परन्तु इसी मनोवृत्ति ने लालच की प्रवृति विकसित की और उसके साथ-साथ हिंसा, लूटपाट, शोषण,छीनाझपटी, संग्रहवृत्ति आदि अनेक दुर्गुण भी पनप गये। जिस सुन्दर और स्वस्थसमाज की संकल्पनाओं के साथ तकनीक को विकसित किया गया उस तकनीक का परिणाम यह हुआ कि मानव खुद एक यन्त्र बनकर रह गया। सम्पत्ति और साधन इतने प्रभावी हो गये कि जीवन उसमें छूट गया । वर्तमान में भावनाविहीन यान्त्रिकजीवन देखा जा रहा है और उसी का प्रभाव सर्वत्र देखा जा रहा है।

बिना दर्शन को जाने मानव कितना बर्बर हो जाता है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण आतंकवाद है। आतंकवाद की समस्या वैश्विकस्तर पर भयावह स्वरूप में है क्योंकि आतंकवादी दृष्टिबाधित है। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, ब्रह्माण्ड किस प्रकार एक-दूसरे से जुडे हुए हैं यह अधिभूत, आध्यात्म और अधिदेव को समझो बिना सम्भव नहीं और इनका ज्ञान बिना दर्शन के सम्भव नहीं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, कृतज्ञता, समभाव, प्रेम, समता आदि धारणाएँ जीवन के प्रत्येकस्तर पर आवश्यक है और दर्शन मानवजीवन में इन तत्वों का समावेश करता है।

वर्तमान में हिंसा, लूटपाट, महिलाओं के साथ अनाचार, आतंकवाद, अलगाववाद जैसी वैश्विक विकृतियां, समाज में जातीयहिंसा, भेदभाव की भावना, युवाओं में फैलती दिशाहीनता और पारिवारिकस्तर पर पारिवारिकविघटन, पारिवारिकसदस्यों में बढता वैमनस्य, व्यक्तिकस्तर पर निराशा, तनाव, अवसाद आत्महत्या जैसी प्रवृत्तियां ही देखी जा रही है । यन्त्रों से सुसज्जितजीवन भी नीसार और

अर्थहीन सा लग रहा है। सभी दौडे जा रहें हैं, बटोरे जा रहें है, जाना कहाँ है, बटोरना क्या है, पता नहीं। शिक्षा की दिन रात उन्नति हो रही है परन्तु शिक्षित निरन्तर घटते जा रहें हैं।

ऐसी दशा में केवल भारतीय दर्शन ही है जो इस बहुमूल्यजीवन का मूल्य स्पष्ट कर सकता है। जीवन हिंसा, घृणा, वैमनस्य, भेदभाव में नहीं है अपितु अहिंसा, समानता, प्रेम, त्याग, उदारता आदि के साथ अपने चरमलक्ष्य को प्राप्त करना है और मानवीयव्यवहार में उक्त व्यवहार बिना दृष्टि के आना सम्भव नहीं और जीवन में इस दृष्टि का समावेश दर्शन की प्रणाली करती है।

सत्यमेव जयते।[7], या न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्वाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।[8], सत्यं वद। धर्मं चर।स्वाध्यायान्माप्रमदितव्यम्।[9], मा विद्विषावहै।[10] उद्धरण है जो जीवन को संतुलित और परिपूर्ण करने के लिये अवाश्यक है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि बिना दर्शन के जीवन जीना उसी प्रकार है जिस प्रकार अंधेरे में तीर चलाना। दर्शन जीवन को लय प्रदान करता है। जीवन का ध्येय स्पष्ट करता है कि वस्तुतः जीवन क्या है, जीवन को क्यूं और किस प्रकार जीना चाहिये। जब तक पदार्थ, प्रकृति, परमात्मा का तादात्म्य स्पष्ट नहीं होता जीवन का मूल्य भी अनुपयोगी हो जाता है। जीवन बहुमूल्य है, बहुत सुन्दर है और विशेष ध्येय का निर्माण ,जीवन का उद्देश्य होता है इन सभी तत्त्वों का विश्लेषण दर्शन के अभाव में सम्भव नहीं है। जीवन को समग्र रूप से जानने और इसे मूल्यवान बनाने के लिये दर्शन की महती भूमिका है।

* * *

सन्दर्भ -

1. सांख्यकारिका -1
2. प्रमाणप्रमेय..........तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः -न्यायसूत्र 1
3. तर्कसंग्रह-1
4. सांख्यकारिका 2
5. विधिमन्त्रनामधेयनिषेधार्थवाद-अर्थसंग्रह, पृष्ठ 10, चैखम्बासुरभारती ग्रन्थमाला, द्वितीयसंस्करण
6. सुखद्युपलब्धिकरणम्। तर्कभाषा, केशवमिश्रप्रणीत, मनस्वरूपनिरूपण, पृष्ठ 217,साहित्यबाजार, नवम् संस्करण।
7. मुण्डकोपनिषद्-3/1/6
8. छान्दोग्योपनिषद् 5/11/5
9. तैत्तिरीयोपनिषद् -1/3/11
10. कठोपनिषद् शान्तिपाठ

* * *